मध्यकालीन भारत में दास प्रथा एक अध्ययन

सुरेन्द्र, शोधछात्र
इतिहास विभाग,
म.द.वि. रोहतक (हरियाणा)

सारांश

मानव की यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वह अपने आपको यथासम्भव दूसरों से श्रेष्ठ मानता है, दूसरों से किसी न किसी क्षेत्र में अपने आपको आगे रखना चाहता है। ऐसा कने से उसके अहं की संतुष्टि होती हैं इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप समाज में छोटे–बड़े, उच्च–नीच, अमीर–गरीब और शासक–शासित का अन्तर देखने को मिलता है। यहां डार्विन का सर्वाइवल ऑफ दो फिटेस्ट सिद्धान्त भी लागू होता है। जो जिना समर्थ या शक्शिाली होता है वह उतना ही आगे निकल जाता है। अपने अहं की संतुष्टि के लिए कई बार व्यक्ति अपने पिता को भी धोखा देकर या मारकर आगे बढ़ने से नहीं चूकता। मध्यकाल में मुग़लकाल के कई शासकों के आचारण इस तथ्य के प्रमाण हैं। प्रभुता प्राप्त करने का लालच व्यक्ति आसानी से नहीं छोड़ पाता। दूसरों से अपने आपको श्रेष्ठ देखने–दिखाने की प्रवृत्ति के कारण सकाज में बडी उथल–पुथल, बड़ी–बड़ी क्रांतिया और लड़ाईयां हो जाती हैं। प्रायः हर युग में समाज में ऊँच–नीच, स्वामी–सेवक का भेद रहा है। इन्हीं सब को संक्षेप में लेकर मध्यकालीन दास प्रथा को इस शोध–पत्र में दिखाने का प्रयास करेंगे।

मुख्य शब्द : *स्वतन्त्रता, शिक्षा, धार्मिक, दास प्रथा, समाज, वैधानिक, मान्यता*

प्रस्तावना

दास–प्रथा हिन्दू समाज में निर्दिष्ट सयम से बहुत काल पूर्व से चली आती थी। गौरशंकर हीराशंकर औझा ने लिखा है 'दास–प्रथा अन्य देशों की दास प्रथा की भांति कलुषित, घृणित और निन्दनीय नहीं थी। वे दास घरों में परिवार के एक अंग की तरह रहते थे।[1] प्राचीन भारतीय समाज में दासों को मुक्त करने की व्यवस्था थी। जो दाय यदि कर्ज के कारण बन्धन में रहते थे, अपने मालिक को वे कर्ज अदा करने के बाद मुक्ति पा जाते थे। दास की सेवा से यदि मालिक प्रसन्न हो जाता था तो उसे दासता के बन्धन से मुक्त कर देता था।[2] दास–प्रथा का उल्लेख स्मृतियों में भी मिलता है। उनके अनुसार दास चार वर्गों में विभक्त थे – जो दास परिवार में पैदा हुआ हो, जिन्हें खरीदा गया हो, जिन्हें लाया गया हो और जिन्हें विरासत के रूप में प्राप्त किया गया हो। पांचवी श्रेणी में वे दास आते थे जिन्होंने अपने आपको बेच दिया हो। दक्षिण भारत में विजयनगर राज्य में दसता की प्रथा को वैधानिक

मान्यता प्राप्त थी।[3] दासों के साथ इतना अच्छा व्यवहार किया जाता था कि वे दास मालू ही नहीं पढ़ते थे। यही कारण था कि चीनी और अरब यात्रियों को भारतीय समाज में सेवकों और दासों में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ा। इससे उन्होंने दास–प्रथा का कोई वर्णन अपने यात्रा विवरणों में नहीं किया। परन्तु अनेक विद्वानों का यह मत है कि प्राचीन काल में दासों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था और उन्हें नाना प्रकार की यातनाएं दी जाती थीं, जिससे वे आत्महत्या तक करने का बाध्य हो जाते थे। रूपवती दासियों को काम वासना की तृप्ति के लिए रखने की प्रथा थी।[4]

मुसलमानों के आक्रमण के कारण भारत की आर्थिक स्थिति गिर गई। अनेक स्थानों में अकाल के कारण लोगों को जीवन निर्वाह करने के लिए दास बनना पड़ा। अलउत्बी का कहना है कि महमूद गजनी के आक्रमण के कारण दासों की संख्या बढ़ गई। ऐसा अनुमान किया जाता हे कि 5 लाख हिन्दुओं को दास बनाकर गजनी ले जाया गया। महमूद ने 1017 ई. में कन्नौज से इतने अधिक लोगों को दास बनाया, जिसकी गणना नहीं की जा सकती थी। हसन निजामी के अनुसार 1197 ई. में तुर्की सैनिकों ने गुजरात पर आक्रमण किया और 20 हजार लोगों को दास बनाया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1202 ई. में कालिजर पर विजय प्राप्त करके 50 हजार लोगों को दास बनाया।[5] मध्यकाल में दासों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई। उस समय जागीरदारों और जमींदारों के आपसी संघर्षों में विजेता पक्ष विजित क्षेत्र से लोगों को पकड़ कर दास के रूप में परिगत कर देते थे। इस प्रकार दासों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

वास्तव में मध्यकाल दास–प्रथा की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। मध्यकाल ऐश्वर्य विलासिता का युग था। इस युग में दास–दासियां रखना जीवन–स्तर का आवश्यक अंग बन गया था। भारत में इस युग में मुसलमानों का शासन था। मुसलमान हिन्दुओं के साथ भेदभाव की नीति रखते थे। सल्तनतकाल में तो तुर्क शासक भारत के मुसलमानों को भी महत्व नहीं देते थे। डॉ. आशीर्वादीलाल ने लिखा है कि, 'तुर्क जाति विभेद की नीति में विश्वास करती थी और इसलिए उन्होंने भारतीय मुसलमानों तक को अपनी शक्तियों से नहीं अपितु सरकारी नौकरियों तक से वंचित कर रखा था। कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर कैकुबाद तक सल्तनत की यही कठोर नीति रही कि प्रशासन की सत्ता पर तुर्कों का ही एकाधिकार बना रहे और बलबन तो खुल रूप से निम्नवंशीय अतुर्कों से नफरत करता था।' इल्तुतमिश के संबंध में भी ऐसा ही कहा जाता है कि उसने अपने शासनकाल में किसी भारतीय मुसलमान को उच्च पद तक नहीं पहुंचने दिया था। तुर्क शासक हिन्दुओं को और भी दारूण कष्ट देते थे। युद्धों में असंख्य हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया जाता था और जो पकड़ लिए जाते थे उन्हें दास बनाकर बेच दिया जाता था। तैमूर ने एक लाख हिन्दू बन्दियों का कत्ल करवा दिया था। डॉ. आशीर्वादीलाल ने तुर्कों के नृशंस अत्याचारों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'हमारे देश के इतिहास के किसी भी युग में प्रारम्भिक अथवा परवर्ती ब्रिटिश युग में भी मानव–जीवन का नृशंसतापूर्ण नाश नहीं किया गया जितना

तुर्क अफगान शासन के इन 250 वर्षों में हुआ।'[6] जो भी हो मध्यकाल में दास–प्रथा विद्यमान थी और उसके दो आधार थे। एक तो अपनत्व की भावना के अभाव के कारण और दूसरी विलासिता की प्रवृत्ति के कारण। आरम्भ में तुर्क शासकों ने भारत के हिन्दू–मुसलमानों को सताने के उद्देश्य से उनके साथ दासवत् आचरण किया था और बाद में मुगलकाल में शासकों और अमीरों ने कुछ व्यक्तियों को सेवाकार्य के लिए दास–दासियां रखकर ऐशो–आराम किया था।

दास रखने की प्रथा मुस्लिम समाज के प्रत्येक प्रतिष्ठित परिवार में थी। ज्यों–ज्यों समय बीतता गया साधारण लोग भी घरेलू काम–काज को स्वयं करने में हीनता का भाव करने लगे और दास और दासियों को अपने घरों में रखने लगे। भारत में दूसरे देशों से दास लाए जाते थे, लेकिन उनमें भारत के दासों की अपेक्षा कार्य कुशलता का अभाव था। असम क्षेत्र के दास शारीरिक शक्ति के कारण बहुत उपयोगी थे, इनकी मांग अधिक थी। एक विशेष प्रकार के दासों को हरम में मुस्लिम महिलाओं की सेवाओं के लिए रखा जाता था। तेरहवीं सदी में इस प्रकार के दासों का व्यापार बंगाल में अधिक होता था। इन्हें कभी–कभी मलाया द्वीप समूह से भारत में लाया जाता था।

मध्ययुग में गरीब–अमीर का अन्तर बहुत था। धनवान लोग धन से असंख्य दास–दासियां रख और खरीद सकते थे। दास पशुओं की तरह खरीदे और बेचे जाते थे। जिस प्रकार पशुओं की हाट लगा करती है, उसी प्रकार निश्चित दिन दासों की हाट लगा करती थी। खरीदे हुए दास अपने मालिक की सेवा करते थे। उन्हें मालिक की आज्ञा का पालन करन पड़ता था। आज्ञोल्लंघन का परिणाम मौत भी हो सकती थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों जाति के धनवान लोग दास रखते थे। दासों की कीमत उनके स्वास्थ्य और उम्र के अनुसार आंकी जाती थी। बहुत से दास विदेशों से भी आयात किए जाते थे। तुर्किस्तान, मलाया आदि से भी दासों को आयात किया जाता था। असम के दासों की कीमत अधिक होती थी, क्योंकि वे स्वस्थ, शक्तिशाली और अच्छे दास होते थे। मुसलमानों में चार प्रकार के दास होते थे – 1. अीत, 2. लब्ध, 3. युद्ध प्राप्त, 4. आत्म विक्रेता।

दासों के और भी प्रकार थे, जैसे – गुहजात (घर की दासी से उत्पन्न), अनाकाल भूत (अकाल के समय मृत्यु के मुंह से बचा हुआ), ऋणदास (कर्जा न चुकाने वाला) और प्रव्रज्यावासित। कुछ हिजड़े दास रखे जाते थे। ये अन्तःपुर में रखे जाते थे। दासों के अलावा स्त्री–दासियां होती थीं। इनकी मुख्यतः दो कोटियां थीं। एक प्रकार की वे दासियां थी जो गृह–कार्य के लिए रखी जाती थीं और दूसरे प्रकार की दासियां वे होती थीं जो अमीरों के आमोद–प्रमोद के लिए रखी जाती थीं।[7] प्रथम प्रकार की दासियों को घर के सब प्रकार के काम–काज करने पड़ते थे। उन्हें शारीरिक यातनाएं भी सहनी पड़ती थीं। दूसरे प्रकार की दासियां अपने रूप, लावण्य और कौशल के आधार पर सम्मान भी प्राप्त कर लेती थीं। इनमें से कुछ तो इतना सुख भोगती थीं कि गृह–स्वामिनी की ईष्या का पात्र बन जाती थीं। अलग–अलग

प्रकार की दासियों के अलग–अलग गुण थे। एक मुग़ल अमीर मिर्जा अजीज कोका ने भिन्न–भिन्न दासियों की विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश डाला है।

दास रखने की प्रथा हिन्दुओं में भी थी। दक्षिण के मन्दिरों में देवता के मनोरंजनार्थ नृत्य करने के लिए देवदासियां रहती थीं। आरम्भ में तो देवदासियों का प्रचलन धार्मिक उद्देश्य से हुआ था। परन्तु आगे चलकर इनको व्यभिचार का आधार ही बना लिया गया था। दासियां भी दासों की भांति विदेशों से आयात की जाती थीं। तुर्किस्तान और चीन से दासियां आयात की जाती थीं मुसलमानों की तरह हिन्दू भी दास रखने में गौरव समझते थे। राजपूत लोगों के यहां दास रखने की प्रथा अधिक प्रचलित थी। कुछ व्यक्ति दास–दासियों का व्यापार करते थे और अच्छा लाभ कमाते थे। वे सुन्दर और बुद्धि–सम्पन्न बालक–बालिकाओं को खरीदकर उन्हें पढ़ा–लिखा लेते थे। उन्हें नृत्य, संगीत आदि में दक्ष बना देते थे। युवावस्था को प्राप्त होने पर उन्हें बेचकर अधिक मूल्य प्राप्त करते थे।[8]

सल्तनत काल में दासों की दशा बहुत खराब नहीं थी। दासों के साथ अच्छा व्यवहार करने का आदेश था। दासों को स्वामी की आज्ञा के बिना कुछ भी करने का अधिकार नहीं था। कुछ स्थितियों में दासों को दासता से मुक्त करने का प्रावधान था। दास यदि अपनी सेवा से स्वामी को प्रसन्न कर लेता था तो स्वामी प्रसन्न होकर उसे दासता मुक्त कर सकता था। यदि स्वामी पर प्राणों का संकट आ जाता और कोई दास प्राण संकट से मुक्ति दिलाने में सफल हो जाता तो उस दास को दासता से मुक्त कर दिया जाता था। दास को स्वतन्त्रता देते समय हिन्दू स्वामी दास के सिर पर से पानी का घड़ा उतार कर फोड़ देता था और बाद में चावल फेंकता हुआ तीन बार कहता था कि 'अब तू दास नहीं है।' मुसलमान स्वामी दास को स्वतन्त्रता देते समय पत्र देता था। यदि कोई व्यक्ति ऋण न चुका पाने के कारण दास बनाया जाता था तो ऐसा दास उस स्थिति में दासता से मुक्त कर दिया जाता था जबकि वह ऋण उतारने में सफल हो जाता था। यदि स्वामी और दासी की कोई सन्तान उत्पन्न हो जाती थी तो उस सन्तान को दास नहीं बनाया जाता था। एक प्रकार के दास वो थे जो अपने स्वामी की आज्ञा के बिना कही जाने की अनुमति नहीं थी। वे किसी को स्वामी की आज्ञा के बिना बुला नहीं सकते थे। दास की मृत्यु के बाद दास की सम्पत्ति स्वामी को प्राप्त होती थी।[9]

सामान्य दासों की तुलना में शाही दासों की स्थिति बहुत अच्छी होती थी। ये दास शिक्षा तथा राजनीतिक दांव–पेचों की जानकारी प्राप्त करके कोई भी ऊँचा पद प्राप्त कर लेते थे। इन दासों को 'बन्दगान–ए–खास' कहा जाता था। जब बादशाह का पुत्र अयोग्य सिद्ध होता था तब शाही दासों को ऊँचा उठने का अवसर आसानी से मिल जाता था, क्योंकि उस स्थिति में शाही दास ही राज्य का संचालन करते थे। बादशों से भी यह बात छिपी नहीं थी। एक बार मुहम्मद गौरी से पूछा गया कि आपके पुत्र नहीं है, आपका उत्तराधिकारी कौन होगा? इस पर उसने कहा थाकि अन्य बादशाहों के तो एक–दो पुत्र ही होंगे, मेरे तो हजारों पुत्र हैं जो मेरे शासन के उत्तराधिकारी बनेंगे। वे ही मेरा नाम

चलाएंगे। गौरी के दासों में नासिरूद्दीन कुबाचा तथा कुतुबुद्दीन ऐबक ने पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर ली थी। गौरी की मृत्यु के बाद उन्होंने शासन अपने हाथ में ले लिया था और स्वतन्त्र शासक बन गए थे। इल्तुतमिश पहले दास था परन्तु बाद में सुल्तान के पद तक पहुंच गया था। इसी प्रकार बलबन भी अपनी कुशाग्र बुद्धि से बाद में शासक बन गया था। मलिक काफर, खाने–जहां मकबूल आदि दासों ने प्रतिभा और योग्यता के आधार पर उच्च पद प्राप्त कर लिए थे। इतना ही नहीं दास लोग तरह–तरह के व्यवसाय करते थे।[10]

दास–प्रथा एक दोषपूर्ण प्रथा थी, परन्तु इस प्रथा के कुछ लाभ भी थे। सल्तनतकालीन मुसलमानों को जो सफलताएं मिली उनमें दासों का भी योगदान था। दासों को आगे बढ़ने के अवसर रहते थे, इसलिए दास होना भी लोग गौरव की बात समझते थे। अनेक शाही दास सुल्तान के पद तक पहुंचे थे। दास–प्रथा के संबंध में डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है, 'मुसलमानों की सफलता का एक और कारण उनकी दास–व्यवस्था थी। इसमें प्रायः इल्तुतमिश और बलबन जैसे सुयोग्य व्यक्ति उत्पन्न हो जाते थे, जो सर्वसाधारण मनुष्यों से कहीं श्रेष्ठ थे, जिनको केवल राजवंश में लेने के कारण ही राजमुकुट और राज्य मिल जाते थे। पूर्वीय मुसलमान प्रदेशों में किसी राजा अथवा सेनापति का दास होना बडे गौरव की बात समझी जाती थी और प्रायः दास तथा निम्न वंश में जन्म लेने पर भी वे उच्च वंश वाले नवाबों के समकक्ष तथा उनसे उत्तम समझे जाते थे।' डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लेनपूत का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहा है, 'सुयोग्य राजा का पुत्र असफल हो सकता है किन्तु मनुश्यों के सच्चे नेताओं का दास बहुधा अपने स्वामी के बराबर ही निकल जाता है। कारण है पुत्र से तो हमारी आशाएं पूर्ण होना एक कल्पना मात्र ही है। यह उत्तराधिकार रूप में अपने पिता के गुणों को प्राप्त कर भी सकता है और नहीं भी कर सकता। इसके विपरीत दास अपनी सर्वश्रेष्ठ योग्यता के कारण उच्च पद पाता है। उसका निर्वान शारीरिक और मानसिक योग्यता के कारण ही होता है।'[11]

यों तो सुल्तानों और मुग़ल बादशाह दोनों को ही दास रखने का शौक था और बिना दासों के वे अपने सुखी जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, परन्तु दासों के अलावा भी मुसलमान शासक हिन्दुओं आदि के साथ अपने दासों का सा ही व्यवहार करते थे। तुर्क शासकों के समय में हिन्दुओं की स्थिति दासों से अच्छी नहीं थी। तुर्क शासक और सरदार चाहे जिस हिन्दू की लड़की को अपनी पत्नी बना सकते थे। इसी डर से हिन्दुओं में बाल विवाह की प्रथा आरम्भ हुई। हिन्दुओं की स्त्रियों को मुसलमानों के घरों में सेवा कार्य करने को विवश होना पड़ता था। इतिहासकार बर्नी ने बताया है कि हिन्दुओं की हालत यहां तक गिर गई थी अलाउद्दीन के समय में वे सोना–चांदी अपने घरों में देखने के लिए भी नहीं रख सकते थे। वे इच्छानुसार अपना जीवनयापन नहीं कर सकते थे। उनकी स्थिति बडी दयनीय थी। मध्ययुग में पर्दा–प्रथा इस हद तक सख्त कर दी गई थी कि उसके कारण नारियों की सारी स्वतन्त्रता समाप्त हो गई थी और वे एक प्रकार से दासियों का सा जीवनयापन करती थीं। कोई

तरूणी बिना पर्दा या घूंघट के देख ली जाती थी तो उसे वेश्यालय भेज दिया जाता था और वेश्यावृत्ति अपनाने पर मजबूर कर दिया जाता था। इस प्रकार दास–दासियों का सा जीवनयापन करने वालों की संख्या तो अनगिनत थी परन्तु दास–दासियों के नाम से पहचाने जाने वालों की संख्या भी मध्यकालीन शासकों के दरबार में कम नहीं थी।[12]

जहाँ दास–प्रथा ने सल्तनत काल में सुल्तानों को कुछ लाभ पहुंचाया वहीं दासों की बढ़ती भीड़ सल्तनत के पतन का कारण बन बैठी। इल्तुतमिश और बलबन जैसे योग्य दास जो कि सुल्तान के पद तक पहुंच गए थे, बहुत कम थे। महिक काफूर तथा मलिक सुसख जैसे दास अधिक हुए जिन्होंने अपने स्वामियों के हितों की विरुद्ध कार्य किया। मलिक काफूर दास का आचरण दासों की सल्तनत विरोधी हरकतों का बड़ा जीता–जागता उदाहरण है। सम्भवतः उसने ही उलाउद्दीन को विष देकर मरवा डाला था उसी ने राजकुमारों को अन्धा कर दिया था। यदि मलिक काफूर को मरवा नहीं दिया गया होता तो वह उलाउद्दीन के वंश को ही खत्म करवा देता। ऐसा ही आचरण मलिक सुसख का था। उसने अपने स्वामी की हत्या की थी और स्वयं सिंहासन पर बैठ गया था। इस प्रकार दासों में शासन के विरोधी प्रवृत्तियां पनप गई थीं। शाही दासों को पर्याप्त धन और अवकाश मिलता था। इससे वे भी मालिकों की तरह विलसिताप्रिय बन गए थे। किसी–किसी दास के यहां ऐसी–ऐसी सुन्दरियां रहती थीं कि उनका सुल्तानों के हरम में भी मिलना कठिन था। विलासी और आलसी दास आगे सुखी रहने की इच्छा से अपने मालिकों रूपी कण्टकों को हटाने के षड्यन्त्र कर डालत थे। उनमें विश्वासपात्रता और ईमानदारी का अभाव हो जाता था। डॉ. मेहन्दी हुसैन ने दासों के संबंध में लिखा है कि वे अपने मालिक के प्रति वफादार नहीं थे। उनका नैतिक स्तर भिन्न था। वे महत्त्वाकांक्षी हो गए थे। फिरोजशाह के जीवनकाल में ही वे शासन के लिए अभिशाप बन गए थे।[13]

दासों की संख्या शाही दरबार में इतनी अधिक रहती थी कि उनकी गतिविधियों की ठीक–ठाक जानकारी भी नहीं रखी जा सकती थी। इसलिए दास कुछ गड़बड़ करने की हिम्मत कर लेते थे। अलाउद्दीन के शासन में शाही दासों की संख्या 50,000 थी और फिरोजशाह तुगलक के शासन में इनकी संख्या 2,00,000 के निकट पहुंच गई थी। जब कोई दास तुगलक बन जात था तब दासों को बहुत–सी सुविधाएं मिलने लगती थीं। वे प्रमादी और विलासी हो जाते थे। खानजहां मकबूल एक दास ही था परन्तु उसका विलासितापूर्कक जीवनयापन करने का तरीका कई सुल्तानों से भी बढ़कर था।

मुगलकाल में भी दास–प्रथा तो थी परन्तु यह प्रथा मुगलकाल में बहुत अधिक नहीं थी। दासों को मुगलकाल में इतनी छूट नहीं थी जितनी सल्तनतकाल में। मुगलकालीन दासों की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी। जितनी सल्तनतकालीन दासों की थी। उन्हें राजनीति में भाग लेने और शासकीय पद प्राप्त करने के अवसर नहीं मिलते थे। मुगलकाल का एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि किसी दास ने अपने स्थान से उठकर कोई उच्च पद प्राप्त कर लिया हो। शासकों की भांति सामंत, अमीर लोग भी

दास रखते थे और अत्यन्त विलासिता का जीवनयापन करते थे। लोग हजारों की संख्या में स्त्रियां और नर्तकियां रखते थे जिन पर अपार खर्च होता था। स्त्रियों को दासियों का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। दास–दासियां रखने के बारे में डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि 'अमीरों के नौकर बहुत होते थे। फीलखाने, अस्तबल व रसोई घर में सैकड़ों नौकर काम करते थे। सवारियां बहुत–सी रहती थीं। मशालची सैकड़ों होते थे। गुलामों की संख्या अधिक होती थी। अमीरों के साथ बहुत से आदमी चलते थे। कोई प्रतिष्ठित मनुष्य सड़क पर बिना नौकरों–गुलामों के चलता ही न था।' इस प्रकार मध्यकाल में भारत में दास–प्रथा का बड़ा प्रचलन था। आरम्भ में यह प्रथा लाभप्रद भले ही रही हो परन्तु बाद में इससे हानि ही अधिक हुई।

सल्तनतकाल में फिरोजशाह तुगलक (1351–88 ई.) ने दास–प्रथा को इतना अधिक प्रोत्साहन दिया कि वह साम्राज्य के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुई। एक तरह से यह काम सफेदपोश बेरोजगार मुसलमानों के भरण–पोषण की व्यवस्था करना था। व्यवसायहीन मध्यम श्रेणी के मुसलमानों के संकट मिटाने के लिए फिरोजशाह ने उन लोंगों की सूची तैयार कराई और उन्हें अपने व्यक्तिगत दासों में भर्ती कर लिया। इतिहासकार अफीक के अनुसार उनकी संख्या बढ़ते–बढ़ते 1,80,000 तक पहुंच गई।[14] जब सुल्तान ने देखा कि संभव है कि वह सबको काम न दे सके तो उसने अपने अमीरों और मालिकों को भी अधिकाधिक दास रखने के लिए प्रोत्साहित किया। जब सुल्तान को एक बार दासों का शौक लग गया और इससे सुल्तान की 'शान' बढ़ने लगी तो वह अधिकाधिक संख्या में दास रखने का विशेष प्रयत्न करने लगा। अफीक ने सुल्तान के दासों का विस्तृत विवरण दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि लगभग 40,000 दास तो सदैव शाही महल में सुल्तान और उसके शाही परिवार की सेवा में रहते थे। दासों की देख–रेख के लिए अलग विभाग खोला गया था। दासों के लिए पृथक कोष और दीवान थे। दासों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाता था और उनको विभिन्न हस्तकालाओं में शिक्षा दी जाती थी।[15] दास–प्रथा फिरोजशाह के शासनकाल की एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसने राजकोष की रीढ़ तोड़ने में निर्णायक भूमिका निभाई। दास–प्रथा के बारे में अफीक लिखता है कि 'सुल्तान फिरोज के समय में यह प्रथा थी कि प्रतिवर्ष अक्ताओं से मुक्ते चरण चूमने आते तो वे अपने साधन के अनुसार प्रत्येक प्रकार के उपहार लाते थे। अरबी घोड़े, बहुमूल्य तरूण, असंय हाथी, विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र, असंख्य सोने–चांदी के बर्तन, अस्त्र–शस्त्र उच्च चौपाये आदि प्रत्येक अपनी अक्ता की हैसियत के अनुसार लाता था। प्रत्येक प्रकार की वस्तु कोई 100, कोई 50, कोई 20, कोई 11 की संख्या में लाकर प्रस्तुत करता था। वे दास भी लाते थे। सुल्तान ने इस प्रकार आदेश दे दिया था कि अक्ताओं के मुक्ते जितना उपहार लाएं उसका मूल्यांकन किया जाए और उसमें से महसूल मुजरा कर दिया जाए। सुल्तान फिरोजशाह ने अपार उपहार का नियम बनाया था। भूतपूर्व सुल्तानों के समय में यह प्रथा नहीं थी। जो मुक्ती अपनी अक्ता से आता तो वह जो कुछ उससे हो सकता, भूतपूर्व सुल्तानों की सेवा में प्रस्तुत कर देता। वह

उपहार महसूल में मुजरा नहीं होता था। फिरोजशाह ने अपने राज्यकाल में यह आदेश दे दिया कि 'मुक्तों का व्यय बहुत अधिक होता है। उन्हें उपहार से क्षमा कर दिया जाए और कष्ट न दिया जाए। उसने आदेश दिया कि जो मुक्ती अपीन अक्ता से आएं तो जो चीजें उसकी अक्ता में होती हों उन्हें बहुत बड़ी संख्या में ले आएं और उसका मूल्य कर में मुजरा करा दें जिससे दोनों ओर से सम्मान प्राप्त हो। मुक्ती का भी सम्मान बना रहे और राजसिंहासन के समक्ष बादशाह के योग्य उपहार भी प्रस्तुत हो जाएं।[16] पूरे 40 वर्ष इस नियम का पालन होता रहा।

जो मुक्ती अधिक दास उपहार में प्रस्तुत करता उस पर अत्यधिक अनुकम्पा तथा अनुग्रह प्रदर्शित किया जाता। जो मुक्ता थोड़े दास प्रस्तुत करता उस पर उसी अनुपात से अनुकम्पा प्रदर्शित की जाती। जब अक्ता के मुक्तों को विश्वास हो गया कि सुल्तान हितैषी दास एकत्र करने का बहुत आकांक्षी है तो आक्ताओं के समस्त मुक्ते समस्त कार्यों की अपेक्षा इस कार्य को महत्वपूर्ण समझने लगे। सुल्तान के प्रयत्न से कुछ वर्षों में इतने सदाचारी दास एकत्र हो गए कि इसका उल्लेख संभव नहीं। जब बादशाह ने देख लिया कि बहुत बड़ी संख्या में दास एकत्र हो गए हैं तो उसने कुछ को मुल्तान, कुछ मो दीपालपुर कुछ को हिसार–फिरोजा, कुछ को सामाना, कुछ को गुजरात तथा अन्य स्थानों में रहने के लिए भेज दिया। उनमें से प्रत्येक का उस अक्ता में प्रबन्ध कर दिया। उनक पालन हेतु परोपकारिता का हाथ बढ़ाया। कुछ दासों के लिए अक्ताओं में सेना के साथ उनकी रोटी प्राप्त करने का प्रबन्ध कर दिया। उनके व्यय हेतु ग्राम दे दिया (देहहा दर वजह दाद)। अन्य दारा जो शहर (दिल्ली) में थे उनका पूरा वेतन निश्चित किया। कुछ को 100 तनका, कुछ को 50 तनका, कुछ को 40 तनका, कुछ को 30 और कुछ को 25, साधारण को 20 तनका नियत किया गया। 10 तनके से किसी को कम न प्राप्त था। प्रति मास अथवा छठे मास अथवा चौथे मास अथवा तीसरे मास बिना किसी कमी के उन्हें यह धन खजाने से प्राप्त हो जाता था।[17]

कुछ कुरान पढ़ने, उसे कण्ठस्थ करने, कुछ धार्मिक शिक्षा तथा कुछ लिखने का काम करते। कुछ सुल्तान के आदेशानुसार हज करने चले जाते। कुछ को शिल्पकारों को सौंप दिया जाता था, जो उन्हें शिल्प तथा कारीगरी सिखाते थे। 12,000 दास शिल्पकार बन गए, 40,000 दास नित्य सवारी के समय तथा महल में उपस्थित रहते थे। इस तरह 1,80,000 दास नगरों तथा अक्ताओं में एकत्र हो गए। फिरोजशाह उनको संतुष्ट एवं सुखी रखने का प्रयत्न किया करता था। इस प्रकार उसकी हठता की जड़ तथा स्थिरता पाताल तक पहुंच गई।

बादशाह यह कार्य अपने लिए अनिवार्य समझता था। यह कार्य इस सीमा तक पहुंच गया कि अर्जए बन्देगान (दासों की भर्ती तथा निरीक्षण करने वाले अधिकारी) पृथक मजमूआदार प्रथम् (दासों के ऊपर जो धन व्यय होता था उसकी जांच करने वाला अधिकारी) दासों के व्यय का खजाना पृथक् दासों

का दीवाना पृथक् चाऊशगोरी तथा नायब चाऊशगोरिए (संभवतः गोरे दासों का अधिकारी) दीवान पृथक् अर्थात् दासों के दीवान के अधिकारी दिवाने वजादत के अधिकारियों से पूर्णतः पृथक् रहते थे।

जब सुल्तान फिरोजशाह किसी और प्रस्थान करता था तो धर्नुधारी दास पृथक् समूह बनाकर आगे–आगे चलते थे। हजार–हजार तलवार चलाने वाले दास, बन्देगाने आवर्द (युद्ध करने वाले दास), बाहुली (शिकार खेलने वाले दास) भैंसो पर सवार होकर कुछ बन्देगाने हजारा (संभवतः अफगानों के हजारा समूह के दास) तुर्की तथा अरबी घोड़ों पर सवार, परिजनों सहित हजारों की संख्या में पृथक्–पृथक् बादहशाह के पीछे–पीछे चलते थे।[18]

इस प्रकार समस्त शाही कारखानों में आबदार, शराबदार, जमादार, मतबखी, इत्रदार, तखतदार, चत्रदार, शमादार, पर्दादार, जानदार, सिलाहदार, शिकरादार, यूजिबान, सियहगोशदार, पीलबा, सतूर, बन्दान, खासदार, दारूदार, संगतराश, सक्का इत्यादि तथा महल के भीरत एवं बाहर अलमखान, यात्रा तथा महल में नौकतपास, तरगाक तथा चौकी, किताब खान में मुरान पढ़ने वाले दास, अलमखाना, घड़यालखाना, दीवानों में मुहर्रिर तथा कुछ दास दीवाने अर्ज तथा दीवाने बजारत में, नकीबों में तथा कुछ दास मुक्ते, परगनादार तथा शहनंगाने महल आदि नियुक्त हुए। इस प्रकार कोई स्थान सुल्तान फिरोजशाह ने दासों से रिक्त नहीं छोड़ा था। दिल्ली राज्य में किसी भी बादशाह ने फिरोजशाह के अतिरिक्त इतने दास एकत्र नहीं किए थे। सुल्तान अलाउद्दीन ने 50,000 दास एकत्र किए थे। वे उसके परामर्शदाता थे। अलाई राज्यकाल के उपरान्त किसी भी बादशाह ने इतने अधिक दास एकत्र नहीं किए।[19]

फिरोज की दास–प्रथा साम्राज्य के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुई। यद्यपि शिल्प–उद्योगों को लाभ पहुंचा, लेकिन राजकोष पर बहुत भार पड़ा और दासों के षड्यन्त्रों ने फिरोज के दुर्बल उत्तराधिकारीयों के विनाश को निकट ला दिया। 'अन्ततोगत्वा, ये दास इतने साहसी बन गए कि उन्होंने फिरोजशाह तुगलक के परिवार के राजकुमारों के सिर बेहिचक काट डाले और उन्हें दरबार के दरवाजे पर लटका दिया।[20] शायद फिरोजशाह ने चाहा था कि निष्ठावान शाही गुलामों का ऐसा समूह बन जाए तो उसके प्रति और उत्तराधिकारियों के प्रति वफादार रहे, लेकिन इन गुलामों ने ही फिरोजशाह के परिवार का नाश कर दिया।[21]

निष्कर्ष :

इस हम अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मध्ययुग में गरीब–अमीर का अन्तर बहुत था और दास–प्रथा की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। दासों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था और उन्हें नाना प्रकार की यातनाएं दी जाती थीं, जिससे वे आत्महत्या तक करने का बाध्य हो जाते थे। तुर्क शासकों ने भारत के हिन्दू–मुसलमानों को सताने के उद्देश्य से उनके साथ दासवत् आचरण किया

था। सल्तनत काल में दासों की दशा बहुत खराब नहीं थी। कुछ स्थितियों में दासों को दासता से मुक्त करने का प्रावधान था। दास शिक्षा तथा राजनीतिक दांव–पेचों की जानकारी प्राप्त करके कोई भी ऊँचा पद प्राप्त कर लेते थे। फिरोजशाह की दास–प्रथा साम्राज्य के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुई।

सन्दर्भ

[1] ओझा, गौरीशंकर, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तानी एकेडमी, संयुक्त प्रर्दश, प्रयाग, 1958, पृ. 49
[2] वही, पृ. 49
[3] श्रीवास्तव, ए.एल., दिल्ली सल्तनत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1965, पृ. 583
[4] ललन जी गोपाल, द इक्नोमिक लाइफ ऑफ नोर्थन इण्डिया, पृ. 71
[5] चौबे एवं श्रीवास्तव, वही, पृ. 276
[6] श्रीवास्तव, ए.एल., दिल्ली, सल्तनत, पृ. 318
[7] चौबे एवं श्रीवास्तव, वही, पृ. 277
[8] शास्त्री, के.ए., दक्षिण भारत का इतिहास, बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998, पृ. 77
[9] श्रीवास्तव, ए.एल, दिल्ली सल्तनत, पृ. 257
[10] हबीब, मोहम्मद एण्ड निजामी, के.ए., दिल्ली सल्तनत, भारतीय अनुसंधान परिषद, 1950, पृ. 182
[11] प्रसाद, ईश्वरी, हिस्ट्री ऑफ मीडिवल इण्डिया, इण्डियन प्रैस, इलाहाबाद, 1940, पृ. 382
[12] बर्नी, तारीख–ए–फिरोजशाही, सं. एच.एम. इलियट एण्ड डाउनसन, 2003, भाग–3, पृ. 138
[13] मेहंदी हुसैन, राईज एण्ड फाल ऑ मोहम्मद बिन तुगलक, पृ. 12
[14] अफीक शमज़ सिराज, तारीख–ए–फिरोजशाही, अनुवादक एच.एम. इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाय इटस आऊन हिस्टोरियन, भाग–2, नई दिल्ली, लो प्राइज पब्लिकेशन, 2001, पृ. 188
[15] वही, पृ. 189
[16] वही, पृ. 189
[17] वही, पृ. 195
[18] वही, पृ. 196
[19] एस.ए.ए. रिजवी, तुगलककालीन भारत, पृ. 113–114
[20] सिंह, प्रताप, मध्यकालीन भारत (1200–1526), पृ. 365–68
[21] श्रीवास्तव, ए.एल., मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 23